मणिपर्वत (रत्नाचल)
का
इतिहास

लेखकः—मानसतत्वान्वेषी, वेदान्तभूषण

डॉ० पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी महाराज

संस्थापक—श्रीरामग्रन्थागार [अयोध्या]

संपादक—संवर्धक—मानसमर्मज्ञ—आचार्यप्रवर

पं० श्रीसच्चिदानन्द दास रामायणी

महान्त—वरविश्रामबाग, श्रीरामग्रन्थागार, मणिपर्वत

श्रीअयोध्या धाम

मूल्य ३-०० रु०

श्री नमोभगवतेरामचन्द्राय श्रीमतेरामानन्दायनमः

मणिपर्वत (रत्नाचल) का इतिहास

लेखक :— मानस तत्वान्वेषी, वेदान्तभूषण
डॉ० पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी महाराज
संस्थापक—श्रीरामग्रंथागार (अयोध्या)

संपादक : संवर्धक—एवं संशोधक
मानस मर्मज्ञ—आचार्यप्रवर
पं० श्रीसच्चिदानन्ददास रामायणी
महान्त—तरविश्रामवाग, श्रीरामग्रन्थागार
मणिपर्वत श्रीअयोध्या धाम

प्रकाशक—श्रीभागवतलाल श्रीवास्तव
ग्राम—जफरपुर, पो० नगपुर (साकेत) उ०प्र०

न्यौछावरि—३/

प्रकाशक :—
श्रीभागवतलाल श्रीवास्तव
ग्रा० जफरपुर, पो० नगपुर
साकेत (उ० प्र०)

तृतीय संस्करण—११००
चैत्रपूर्णिमा—सोमवार (हनुमज्जयंती)
सृष्ट्याब्द—१९, ५, ५८, ८५, ०९५
श्रीरामाब्द :—१, ८१, ९३, १४८
श्रीविक्रमाब्द : २०५१
ईशाब्द : २५।४।१९९४

पुस्तक प्राप्तिका स्थान

१—श्रीरामग्रन्थागार, मणिपर्वत श्रीअयोध्या

२—मानससंघ रामवन पिन-४८५ १११ (सतना) म०प्र०

३—श्री पं० धनेश्वरप्रसादशर्मा 'धन्ने'
ग्रा० पो०—रेड़ा, सारंगढ़, जि० रायगढ़ (म० प्र०)
पिन ४९६ ४५०

पुनर्मुद्रणार्थ न्यो० ३/

मुद्रक : सूर्यवंशी प्रिंटिंग प्रेस
स्वर्गद्वार—अयोध्या

श्रीरामायनमः श्रीगुरवे नमः श्रीमारुते नमः

सम्पादकीय

लेखक-मानसमर्मज्ञ-आचार्यप्रवर-पं०श्रीसच्चिदानन्ददासजी महाराज

मणिपर्वत-अंचलबिसद, रामग्रन्थआगार ।
प्रथम किये प्रस्थापना, पंडित रामकुमार ॥१॥
बरबिश्राम सुबागमें, सीताराम निवास ।
दुर्बिकार, दुर्गुण दुरित, देखत ही सब नास ॥२॥
अभिनन्दन गुरुदेव पद, कमल अमल सानन्द ।
अभिवन्दन करता सदा, दास सच्चिदानन्द ॥३॥

विश्ववन्द्य भगवान् श्रीसीतारामजीको कृपासे यह श्रीगुरुदेव बिरचित लघुग्रंथ 'मणिपर्वत रत्नाचलका इतिहास' पाठकों की सेवामें प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष हो रहा है। इसे श्रीगुरुदेव भगवान् बेदान्तभूषण डा० पं० श्रीरामकुमारदासजी महाराजने सं० १९३० में ही लिखा था। आगे चलकर मणिपर्वत रत्नाचल के पुजारी श्रीसीतारामदासजीके स्नेहाग्रहपर सन १९८१ में छपवाया था। उस समय पुजारीजीने इसका प्रकाशन ब्यय दिया था। अब उसकी प्रतियाँ समाप्त हो चुकी हैं। अतः इस ग्रन्थका पुनर्प्रकाशन आवश्यक हो गया है।

मैने श्रीमहाराजजीसे अध्ययनकालमें वरविश्रामबाग नामक इस स्थानका इतिहास बड़े विस्तारपूर्वक सुना था। अब इस मणिपर्वत [रत्नाचल] के इतिहासके साथही वरविश्रामबागका इतिहास भी प्रकाशित करानेकी प्रेरणा श्री गुरुदेव महाराज द्वारा हो रही है। अतः संक्षेपमें मैं उसेभी देनेका प्रयास करूँगा। मेरी इच्छा हो रही है कि भविष्यमें वरबिश्रामबागका विस्तार पूर्वक इतिहास लिखूँ जिसमें श्रीरामग्रन्थागार नामक वृहद पुस्तकालयकी भी स्थापनाके सम्बन्धमें आवश्यक बातें आ

जायँ। अभी तो श्रीजानकीरमण भगवान्‌की कृपासे मणिपर्वत [रत्नाचल] का इतिहास और संक्षिप्त रूपेण वरविश्रामबागकी चर्चा करूँगा। पाठकोंको इतने से ही इस समय संतोष करना पड़ेगा। आगे भविष्यमें श्रीगुरुदेव एवं श्रीरघुनाथजी की जैसी प्रेरणा होगी वैसा होगा।

श्रीमणिपर्वतान्तरमें विराजमान यह वरविश्रामबाग नामक स्थान आज भी श्रीजानकीरमण भगवान्‌का श्रेष्ठ विश्राम स्थल है यहाँ आते ही स्वाभाविक शांति प्राप्ति होने लगती है। इसमें श्रीरामग्रन्थागारकी स्थापना हो जानेसे इस स्थानका विशेष रूपसे गौरव बढ़ गया है। अनेक बुद्धिजीवी व्यक्तित्व यहाँ आकर सन्तुष्ट होकर लौटते हैं। देशके भिन्न-भिन्न भागोंसे आकर शोध छात्र-छात्रायें लाभान्वित होती रहती हैं। विद्वान् संतभी यहाँ आकर प्रमुदित होते हैं।

श्रीगुरुदेव महाराज द्वारा विरचित श्रीमणिपर्वतका इतिहास नामक इस ग्रन्थका प्रकाशन व्यय उनके कृपापात्र शिष्य श्री श्रीभागवतलालजी श्रीवास्तव दे रहे हैं।

प्रकाशनादि में सम्पूर्ण व्यय राशि लगभग १५०० रुपयों की हुई है। श्रीजानकीरमण भगवान्‌की अहैतुकी कृपा एवं श्रीगुरूदेव भगवान्‌की दया उनके ऊपर सदा-सर्वदा बनी रहे। यही मेरी शुभकामना और प्रार्थना हैं श्रीश्रीभागवत लालजी इस स्थानके शुभचिन्तकोंमें एक स्थान रखते हैं। उन्होंने श्रीराम ग्रंथागारके ग्रन्थोंकी सुरक्षाके लिये एक सुन्दर आलमारी बनवा कर भेंट किया है। भविष्यमें भी उन्होंने इसी प्रकार सहायता करनेका वचन दिया है। श्रीभगवान् उनको सपरिवार सानन्द एवं स्वस्थ रखें यही मेरी प्रभुसे विनती है। साथ ही मेरा शुभाशीर्वाद भी है।

श्रीभागवतजी वरविश्रामबाग स्थानके प्रियजनोंमें स्थान रखते हैं। उन्हें इस गुरुपीठकी अभिवृद्धि हेतु सर्वदा उत्सुकता बनी रहती है। वे अत्यन्त स्नेहमय हृदय वाले हैं। मैं श्री-ठाकुरजी से उनकी मंगल कामना करता हूँ। उन्हें मेरा शुभाशीर्वाद है—

सदा सुखी होकर रहें, भक्त भागवत लाल।
भक्तिभक्त भगवन्त गुरु, कृपा करें सबकाल ॥१॥
तन-धन यश बल बुद्धिगण, वर्धित हों सबओर।
रामभक्त श्रीमारुती, रखें कृपा वरजोर ॥२॥
दुख दुर्गुण दारिद्रय का, दमन करें भूतेश।
शत्रु शोक सन्ताप का, शमन करें विश्वेश ॥३॥
भौतिक बाधा दूर हों मिटें सकल दुख द्वन्द।
चिरजीवी सानन्द हों, वदत 'सच्चिदानन्द ॥४॥

अस्तु मैं श्रीगुरुदेव महाराजके कृपापात्र शिष्य श्रीश्रीभागवत लालजीको इस महत् कार्यके लिये धन्यवाद देता हूँ और शुभकामना करता हूँ कि आगे भी श्रीगुरुदेव महाराज द्वारा रचित ग्रन्थोंका प्रकाशन उनके द्वारा होता रहे।

इस ग्रन्थका प्रकाशन अत्यन्त शीघ्रतामें हो रहा है अतः इसकी साज सज्जा उचित रूपसे नहीं हो पायी। भविष्यमें पुनर्प्रकाशन कालमें इसका ध्यान रखा जायेगा।

सम्प्रदायानुचरः
पं० सच्चिदानन्ददासः
दि० २५-३-१९९४

[अनन्त श्रीविभूषित साकेतवासी पं०श्रीरामकुमारदासजी श्रीगुरुदेव महाराजने प्रथम प्रकाशनके समय जो लेखकीय निवेदन लिखा था उसे ही ज्यों का त्यों इस समय द्वितीय प्रकाशनके समय भी दिया जा रहा है।] — संपादक

लेखकीय निवेदन

श्रियः श्रियै नमः

जाको चण्ड अखण्ड यश, व्यापि रह्यो ब्रह्माण्ड।
सब जग की रक्षा करत, सो वैष्णवी त्रिदण्ड॥

मानस पीयूषके प्रारम्भ कालसे ही मैं संपादक श्रीअंजनी नंदनशरणजीको लेख देता चला आया। मानस पीयूषमें बहुतसे लेख लिखनेके पश्चात् मानसमणि, प्रेमसन्देश, कल्याण, सार्वजनिक समन्वय, श्रेय, श्रीरामानन्दसन्देश, विरक्त, नाममाहात्म्य एवं विवेकरश्मि आदि अनेक सांप्रदायिक पत्र-पत्रिकाओंमें मेरे लेख छपने लगे। सैकड़ों पत्र-पत्रिकाओंमें छपे लेखोंकी संख्या कई सौ हैं। बहुत-सी छोटी-बड़ी पुस्तकें भी लिखा हूँ। अब हाथ कांपने के कारण स्वयं बहुत-कम लिख पाता हूँ। यदि कोई लिखनेवाला विद्यार्थी पासमें बैठता है तो कभी-कभी बोलकर नया लेख लिखा देता हूँ। उन्हीं लेखोंमें अनेक प्रेमी मित्र एवं शिष्योंके आग्रहसे प्रकाशक मिलनेपर छोटी-छोटी पुस्तकोंका रूप दे देता हूँ। मणिपर्वत नामक इस लघुग्रन्थकी रचना मैंने सन् १९३० में ही की थी। अब मणिपर्वतके पुजारी श्रीसीतारामदासजी महाराज—मणिपर्वत वाले इसका प्रकाशन करा रहे हैं। एतदर्थ उन्हें मेरा आशीर्वाद है।

भगवद्भागवदानुचरः
पं० रामकुमार दासः

—०—०—०—

सं० २०३८ विक्रम ईशा संवत—१९८१ ई०

[१]

राघव जो भावै सो कीजै ।
हौं सब बिधि तुव जन गनि लीजै ॥
तुम्हरोइ एक भरोसो मों कहँ आन भरोसो नाहीं ।
मोहि अपनो गुनि कृपा कीजिये जद्यपि अमित गुनाहीं ॥
ना कछु जाँचू मिलो न छाँड़ू जिय की जानि पतीजै ।
राघव जो भावै सो कीजै ॥१॥
मन नित विषयनि लागत चाहत तन नहि शक्ति जनावै ।
नयन नारि तन लखन चहत नित पर अघ श्रवण सुनावै ।
रामकुमार ! कु-मार सतावत मन नहि तुव रस भीजै ।
राघव जो भावै सो कीजै ॥२॥
अमित काल से यहि जग गृह कहि जनम गिने नहि जावै ।
महाभागवत प्रमुख सूर्यसुत निज पुर सतत भ्रमावै ।
अब गुनि दीन 'कुमार' नाथ निज चरण शरण रखि लीजै ।
राघव जो भावै सो कीजै ॥३॥

[२]

श्री श्रीजानकीजी महरानी की जय ।
श्रीजनकराज कन्ये मातः तुम्हारी जय हो ।
त्रैलोक पूज्य धन्ये मातः तुम्हारी जय हो ॥
श्रीजनक ललो प्यारी निमिबंश की दुलारी ।
सब जगसे छटा न्यारी मातः तुम्हारी जय हो ।श्री०।
जा बिधि जगत को भल हो जीवन जनम सुफल हो ।
कीजै सोइ कृपाकरि मातः तुम्हारी जय हो ।श्री०।
नहि और कोउ मेरे मैं जाऊँ किसके नेरे ।
निज चरण में लगालो मातः तुम्हारी जय हो ।श्री०।

कीन्ही कृपा अहैतुकि दीन्ही मनुज की देही ।
अब चरण शरण दीजै मातः तुम्हारी जय हो ।श्री०।
जीवन बचाजो जगमें बीते तुम्हारे मग में ।
तुव चरण प्रेम रँग में मातः तुम्हारी जय हो ।श्री०।
मन पाप से भरा है भवसिन्धु में परा है ।
कृपया निकाल दीजै मातः तुम्हारी जय हो ।श्री०।
हा हम हैं मोह अन्धे करते जगत के धन्धे ।
दीजै सुज्ञान दृग अब मातः तुम्हारी जय हो ।श्री०।
राघव की कञ्ज दृष्टी में है सुधा की सृष्टी ।
करवा दो कृपावृष्टी मात। तुम्हारी जय हो ।श्री०।
नीचे हैं दृग हमारे उपकार लखि तुम्हारे ।
फिर भी सस्वार्थं बिनवौं मातः तुम्हारी जय हो ।श्री०।
की मैं न सुत तुम्हारा की तुम न मातु मेरी ।
फिर क्यों न गोद लेतीं मातः तुम्हारी जय हो ।श्री०।
जस पाप हैं हमारे गनि जम फणीन्द्र हारे ।
हौं तुव चरण सहारे मातः तुम्हारी जय हो ।श्री०।
यह प्रार्थना तुम्हारी सब जग को मोदकारी ।
हम भक्तिके भिखारी मातः तुम्हारी जय हो ।श्री०।
होते कुपूत कितने माता न हो कुमाता ।
लो गोद में कुमारहिं मातः तुम्हारी जय हो ।श्री०।

। श्रीजनकराज कन्ये मातः तुम्हारी जय हो ।
॥ त्रयलोक पूज्यधन्ये मातः तुम्हारी जय हो ॥

(ये दोनों पद्य श्रीजानकी कृपापदावलीसे लिये गये हैं ।)

—संपादक

ॐ

श्रीमणिपर्वतका इतिहास

बैठे मणिपर्वतकी कुञ्जन।
सुभग शिला पर सुरभि सुमन तरु करत भंवर खग गुञ्जन ॥
परम ललित पनही मृदु पायनि पीतांबर गुल्फन लग सोहत ।
जटित कनक मणि लाल झँगा पर पीत फेंट कटि कसि मनमोहत ॥
काँखा सोती बन्यो ऊपरना तापर बनमाला अति राजत।
दक्षिण कर रुचि जानु विराजत बाम हाथ सारंग छबि छाजत ॥
उर मणिहार कंठ श्रीतुलसी वामकंध तरकश दरशावत।
चिबुक कपोल अधर नासा दृग मुखछबि अनुपम कहत न आवत ॥
ऊर्ध्वपुण्ड्र बिच दमकति श्रीद्युति मुकुटजटित मणि कलंगी सोहित।
लटकत केश कपोल कंध लगि रूप देखि हरि हर विधि मोहित ॥
कुंडनि ललित कमल लखि प्रफुलित मारुति पग तर पुष्प संवारत।
'रामकुमार' अनन्दित लखि छबि,भक्ति मुक्ति सुख दूर पँवारत ।१।

मणिपर्वत स्वामिनिसीयकी जय,
मणि मंडप नित्य बिहारकी जय ।
महिमा निधि औध गलीनकी जय,
सरयू रस अमृत धारकी जय ॥
धनुबानकी जय भरतादिकी जय,
कपि अंजनिलाल उदारकी जय ।
रघुराज प्रजा परिवारकी जय,
रिसवार श्रीरामकुमारकी जय ॥२॥

कनक महल ते सुदक्षिण विराजमान,
जनक लड़ैतीको बिहार बत शान सों।
विपिन अशोक मध्य दिव्य मनि कूट राजै,
भ्राजै तरु विवध लतान पुहपान सों ॥

मणिन जटित दिव्य रेशमी निकाम दाम,
सोम वट झूलो परो रवि की कलान सो।
जनक कुमारी सीय कौशल "कुमार" राम,
झूलत उमंग भरे घिरे सखियान सो ॥३॥

कजली

आयो सावन पड़त हिंडोलना सोम सवन वट डारी ना।
झोंका देत झुलावत रघुबर झूलत जनक दुलारी ना॥
अवनी अबर लाखत मनुज सुर जात सबै बलिहारी ना।
रघुवंशी 'कुमार' गन सुनि सुख पावत कजरी प्यारी ना॥

अनुगतजनपालः क्रूर भूपालकालः,
तरुणतरुतमालः श्यामलो भूपबालः।
बहुकिरणविशालः सर्वशक्तिप्रवालः,
स जयति धृततमालः पुण्ड्रकोद्भासिभालः॥

मणिपर्वतकी पहली कथा

श्रीरघुनाथजी चारों भाई अध्ययन करके समावर्तन संस्कार कराकर घर आये तो घरमें विशेष कार्य न होनेके कारण—

बंधु सखा संग लेहि बुलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई॥

वनमें घोड़ोंपर भाइयों मित्रोंके साथ दूर-दूर निकल जाते थे इसलिये वनकी विकरालता पर्वतीय मार्गोंकी कठोरतासे अवगत तो होते थे ही; अनेक बार सिंह-व्याघ्र, दीपि, चित्रक [चीता] तेंदुवा, बाघ बघरा, भालू, आदिका घोर गर्जन सुनते थे। विन्ध्याटवीमें कभी-कभी इन उपर्युक्त क्रव्यादों [मांसाहारियों] एवं पर्वताकार गजेन्द्रों तथा भयंकर अजगरोंसे भी सामना हो जाता था और भयंकर गृद्धों, कौओं, बाज, बरहीं क्रौंचोंसे देखा-देखी होना तो सामान्य बात थीं। इनमें :— (यथा महानाटके)

चर्माय हरिणं दंताय करिणं सिंहं निहन्ति भुजविक्रमसूचनाय,

वनकी जितनी भयंकरताका परिचय श्रीरामजीको था उसमेंसे बहुत थोड़ा ही श्रीजानकीजोको अपने साथ-वन जानेके समय हठ करनेपर बताया था। [२/६२/६-८]

"कन्दर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे॥"
भालु बाघ वृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरज भागा॥
"ब्याल कराल विहंग बन घोरा।" (२।६३।३) आदि-आदि।

इतनी विभीषिकायें सुनकर भी श्रीजानकीजीने साथमें बन जाकर जब चित्रकूटकी सुषमा देखा और वर्षा ऋतुमें चित्रकूटका महान बासन्ती वैभव देखा तो श्रीरामजीसे कहने लगीं कि आप तो हमें अयोध्यामें व्यर्थ ही भयभीत कर रहे थे। मैने तो समझ लिया था कि आप मुझे साथ न ले चलनेका बहाना बना रहे हैं। इसीसे मैने भी कल्पना करके कहा था कि—

'औध सौध सत सरिस पहारू।'

वह मेरी कल्पना सचमुच सत्य सिद्ध हुई यहाँ तो 'चित्रकूट सब दिन नीको लागत। 'पावस ऋतु विशेष उमगत सुख'। श्रीजानकीजी जब अयोध्या लौटकर राजराजेश्वरी बनीं तब भी उन्हें चित्रकूट गिरिकी अरण्यानी शोभा बराबर स्मरण आती रही, तो बार-बार श्रीरामजीसे चित्रकूट चलनेका और वहाँ रहनेका आग्रह करने लगीं। भला अवधनरेश राजकाज छोड़कर बराबर चित्रकूटमें कैसे रह सकते थे। और उभयविभूति-नायिका श्रीअवधेश्वरीका प्रेमाग्रह टालना भी जब सर्वथा असम्भव हो गया तो अपने कनक भवनके दक्षिण परकोटेमें स्थित अशोक महावनमें तिलोदकीके दक्षिण तटपर एक नवीन पर्वतकी रचना करवायी और उसका नाम मणिकूट रखा। जिस तरह मन्दाकिनी-के तटपर चित्रकूट स्थित हैं और चित्रकूटके अंचलमें बृहस्पति कुण्ड आदिक कई दिव्य सरोवर हैं। उसी तरह मणिपर्वतके

अंचलमें "गणेशकुण्ड" आदि अनेक दिव्य कुण्डोंका निर्माण कराया गया। जब श्रीरामजीकी इस रचनाके पूर्ण हो जानेपर अयोध्या वासियोंने देखा तो मुक्त कंठसे कहने लगे यह तो चित्रकूटके अनेक अंशोंमें सर्वथा बढ़-चढ़ कर है। तब एक शुभ मुहूर्तमें उसका उद्‌घाटन समारोह हुआ।

मणि पर्वतकी सुषमा देखकर श्रीकिशोरीजी तो मुग्ध हो गयीं परन्तु एक संशोधन किया कि जैसे चित्रकूटकी उपत्यकामें हमारी विशाल ललित पर्णशाला थी वैसे ही एक यहाँ भी सुन्दर पर्णशाला बननी चाहिये, जहाँ हम आप नित्य प्रातः सरयू स्नानके बाद यहाँ आकर भ्रमण करें और इसी पर्णशालामें प्रातः कालिक कलेऊ करें। और बरसात भर तो हम यहीं रहकर बन-बिहार करती रहेंगी और आप दिन भर राजकाज देखकर रात्रिमें यहीं झूलनका आनन्द लेकर तब हम लोग कनकभवन चला करेंगे। भला अवधेश्वरीके बनाये नियमको कौन टाल सकता है। अतः तबसे सदैव नियम हो गया कि प्रातः काल शयन-गृहसे निकलकर शौच आदिसे निबृत होते हैं तब भृत्यगण श्रीरघुनाथजीके सच्चिदानन्द दिव्य विग्रहमें लोक रीतिके अनुसार उत्तमोत्तम फुलेलकी मालिश करते हैं। तब सरयू स्नानके लिये बाहर आते हैं। उसी समय श्रीकिशोरीजीको भी स्नानके लिये तैयार कराकर सखियाँ लाती हैं। तब युगल दम्पत्ति शत्रुंजय नामक श्वेत गजेन्द्रपर आरूढ़ होते हैं। उसी समय लक्ष्मणजी छत्र, भरत-शत्रुघ्नजी चमर-व्यंजनकी सेवामें लग जाते हैं और श्रीहनुमानजी गजेन्द्रके कंधेपर बैठकर पाँवसे गजका संचालन करते तथा हाथमें करताल लेकर कीर्तन करते हुए सरयू जाते हैं। वहाँसे सबलोग स्नान करके बाहर-ही-बाहर उसी गजेन्द्रसे मणिपर्वतकी उपत्यकामें अवस्थित पर्णशालामें आते हैं। तो वहाँ अंतरंग भृत्य स्वर्ण-थालमें पद प्रक्षालन करके चन्दन

माला धूप दीप आदिसे पूजन करके श्रीकिशोरीजीकी इच्छानुसार युगल दम्पतिको कलेऊ कराता है। तत्पश्चात् आरती प्रदक्षिणा प्रणाम करता है, उसके बाद युगल दम्पतिके दिव्य प्रसाद एवं चरणामृतको श्रीहनुमानजी स्वयं लेते हैं और उस महाप्रसादके अधिकारियोंको कृपा करके प्रदान करते हैं। तत्पश्चात् उस समाजको लेकर यथेष्ट प्रस्थान करते हैं। यह मणिपर्वत-विहार एक रस सदैव चलता रहता है। ऐसा आचार्य चरणोंने बताया है।

मणिपर्वतकी दूसरी कथा

जिस समय राजकुमार कुशका प्रथम विवाह हुआ तब श्रीरामजीने पहले श्रीजानकीजीसे पश्चात् भाइयों, मित्रों, मन्त्रियोंसे सलाह करके गुरुदेव वशिष्ठजीकी आज्ञा लेकर कुशको युवराज बना दिया। कुछ दिनोंके बाद एक बार ययाति वंशीय राजा अजमीढ़के साथ कुशका युद्ध हो रहा था और श्रीसीतारामजी रथ पर बैठकर दूरसे युद्धका कौतुक देख रहे थे।

ब्रह्माके वरदानके अनुसार अभी अजमीढ़ की मृत्यु दूर थी। परन्तु उस महायुद्धमें अयोध्याके युवराज कुशने जब अजमीढ़पर महानारायण अस्त्रका प्रयोग करना चाहा तो ब्रह्माने आकर कुशसे प्रार्थना किया कि युवराज इसे अभी मार देंगे तो मेरा वरदान झूठा हो जायगा क्योंकि आपके इस दिव्यास्त्रका परिहार मेरे पास भी नहीं है। अतः इस राजाको प्राणदान दीजिए। कुशने कहा ऐसा हो नहीं सकता क्योंकि मेरे मझले चाचा भूतपूर्व युवराज श्रीलक्ष्मणजीने यह विधान [कानून] बना रखा है कि—

"रिपु रिन रंच न राखब काऊ"

इसीको पीछेके नीतिशास्त्रकारोंने कारण बताते हुए कहाकि—

ऋण शेषं व्याधि शेषं शत्रु शेषं तथैव च।
पुनः पुनः प्रवर्धन्ते त्रीणिशेषं न कारयेत् ॥।

अतः मैं शत्रुको कैसे छोड़ सकता हूँ ? यदि मेरे गुरुजन मुझे आज्ञा दें, तो मैं इसे छोड़ सकता हूँ । यद्यपि आप भी मेरे गुरुजनोंमें हैं परन्तु इस समय शत्रु पक्षमें हैं और मेरे परम गुरुजन माता-पिता यहाँ से थोड़ी दूर पर वह देखिये रथपर विराजमान हैं जाइये उनसे आज्ञा ले आइए तो इसे मैं प्राणदान दे दूँ । ब्रह्मा दौड़कर श्रीरामजीके पास गये, श्रीरामजीने कहा भला ऐसा कौन पिता होगा जो अपने बेटेकी उन्नतिमें बाधा करेगा । दूसरी बात अभी कुशकी युवावस्था है विजय का उल्लास है उसी उमङ्गमें यदि उसने मेरे वचन की अवहेलना किया तो मेरी प्रतिष्ठाभङ्ग हुई और उसे आज्ञा भङ्गका दोष लगेगा । अतः मैं उसे नहीं रोकूँगा । अतः ब्रह्माजी निराश होकर श्रीजानकीजीके चरणोंकी तरफ देखने लगे । क्योंकिश्रीजानकीजी ब्रह्माजीके गुरुश्री-हनुमानजीके गुरु हैं । श्रीजानकीजीने इशारेसे ब्रह्माजी-को समझा दिया कि अजमीढ़को कुशके चरणोंमें गिरा दीजिये यह बात ब्रह्माजीकी समझ में आ गई । ब्रह्माजीके कहनेपर शरण-शरण कहते-कहते राजा अजमीढ़ कुशके चरणोंमें गिर पड़े । तत्पश्चात् जानकीजी कुशको डाँटा–अरे कुश ? चरणों पर गिरे हुएके प्रति भी तुम्हारा बाण हाथमें ही है ।

कुशने लज्जित होकर बाणको त्रोणमें रख लिया, और माता-पिताके चरणोंपर गिर पड़े । श्रीजानकीजीने कुशको हृदयसे लगाकर मत्था सूँघा ओर मूक आशीर्वाद दिया तथा कुशकी धैर्य निष्ठा एवं शौर्यको देखकर श्रीरामजोने राजकीय मुद्रा हाथमें पहनाकर कुशको युवराजसे अयोध्या नरेश बना दिया ।

(आनन्द रामायण मनोहर कांड सर्ग दो, तीन, और चार)

जिससमय यह घटना घट रही थी उससमय कर्कोटक नागकी

युवती कुमारी कन्या कुमुद्वती आकाश मार्गसे कहीं जा रही थी। कुशके शौर्य, सौंदर्य, धर्म निष्ठाको देखकर उसने सर्वथा कुशको मनसे वरण कर लिया। परन्तु श्रीरामजी एक पत्नीव्रती हैं तथा तत्कालीन मानवीय समस्त प्रजा एक पत्नीव्रती हैं और कुशके एक पत्नीहै ही। इसलिये कुशको वरमाला पहनानेकी उसकी हिम्मत नहीं हुई परन्तु अप्रत्यक्ष रूपसे अयोध्यामें रहने लगी एक दिन महाराज कुश सरयूमें स्नान करके गोता लगाकर जैसे ही ऊपर उठे तो हाथमें राजकीय मुद्राको न पाकर समझे कि सरयूमें गिर गई होगी इसलिये गोताखोर और जालोंके द्वारा दूर-दूर तक खोज करा दी गयी। उस पर भी जब वह नहीं मिली तो नष्ट वस्तुको बतानेवाले ज्योतिषियोंसे पूँछा गया तो देवज्ञोंने गणना करके बताया कि अहिलोक भोगावती निवासी नागराज वासुकोके बांधव नागराज कर्कोटककी कन्या कुमुद्वती राजमुद्रा ले गयी है। सुनते ही कुशने कहा—मैं सारे नागलोकको नाग नामसे शेष कर दूँगा। इस गर्जनाको सुनते ही नागराज कर्कोटक कुशके चरणोंमें गिर पड़ा। तब कुशके अभयदान देनेपर प्रार्थना किया कि मेरी कन्या कुमुद्वतीको आप पत्नीके रूपमें स्वीकार कर लीजिए। कुशने कहा—मेरे पिताने सारे राज्यमें एक पत्नीव्रतका नियम कर रखा है और मेरी एक पत्नी है ही। अतः मैं कैसे इसे पत्नीके रूपमें ग्रहण कर सकता हूँ? तब नागराजने स्मार्त नियम समझाया कि पितामहकी कमाईपर जिसतरह पौत्रका पूर्ण अधिकार होता है। उसी तरह पितामहकी रीतिको पौत्र ग्रहण कर सकता है। इस बातको भू-मण्डलके सर्वश्रेष्ठ वेदज्ञ ब्रह्मपुत्र मैत्रावरुणि महर्षि वशिष्ठजीसे पूँछ लीजिए। अन्ततोगत्वा श्रीवशिष्ठजीकी आज्ञासे महाराज कुशने कुमुद्वतीका वर-माला स्वीकार किया। तबसे नागलोकमें प्रसन्नताकी लहर व्याप्त हो गयी। लाखों करोड़ों नागोंने

अपनी प्रिय राजकुमारीके दहेजमें एक–एक मणि उगलकर अयोध्या नरेशको प्रदान किया ।

[आ०रा०वि०का० सर्ग ४ और 'अंधेरेके खिलाफ' पुस्तककेपृ० ८६]

[ज्ञातव्य है कि बहुमुखी नागोंकी मणि निकलनेपर दूसरी मणि तुरन्त उत्पन्न हो जाती है अतः बहुमुखी नागोंकी कोई हानि नहीं होती ।]

नागमणिका प्रभाव विख्यात है हो कि—

अहि अघ अवगुन मणि नहिं गहई । हरइ गरल दुख दारिद दहई ॥

नागोंने अपनी मणियाँ जहाँ उगली थीं वहाँ मणियोंका पर्वताकार स्तूप हो गया । तब उसका नाम मणिपर्वत पड़ा ।

मणिपर्वतकी तीसरी कथा

[क] अयोध्या नजरबाग युगलमाधुरी कुञ्जके भक्तमाली श्री मैथिलीशरणजी महाराजने नीचे लिखी कथा बड़े विस्तारसे बनायी थी जिसका संक्षिप्त रूप मैं दे रहा हूँ ।

आश्विनके कृष्ण पक्षमें विश्वामित्रजी श्रीरामजी और लक्ष्मणजीको अपने आश्रम ले गये थे । आश्विनकी अमावश्याको अपने आश्रमपर पहुंचे थे । आश्विन शुक्ला प्रतिपदाके प्रातः—

प्रात कहा मुनि सन रघुराई । निर्भय यज्ञ करहु तुम जाई ॥

आश्विन शुक्ला षष्ठीको यज्ञ पूर्ण हुआ उसके बाद तीन दिन और वहाँ रहे, विजयादशमीके दिन शस्त्रास्त्रकी पूजा करके मिथिलाके लिये विश्वामित्रजीके साथ प्रस्थान किया । त्रयोदशीको जनकपुर पहुँचे, चतुर्दशीको नगर दर्शन और आश्विन पूर्णिमाको धनुंभङ्ग हुआ । उसी दिन रात्रिको अन्तिम प्रहरमें अयोध्याजी में मझली महारानी श्रीकैकेयीजीने स्वप्नमें एक विचित्र महल देखा; जो बहुत विशाल बहुमूल्य मणियोंसे जटित सम्पूर्ण सोनेका था । सोने और मणियोंने महारानीको ही नहीं आकर्षित

किया, वरन् उस महलकी वास्तुकलाने महारानीके मनको आकर्षित कर लिया। क्योंकि महारानीजीने वैसा कलापूर्ण महल भूमंडल की कौन कहे **अमरावतीमें** भी नहीं देखा था। अतः प्रातःकाल ही चक्रवर्ती राजा दशरथजीके पीछे पड़ी कि वैसा ही महल बनवा दीजिए। चक्रवर्तीजीने कहा—मणि, रत्न, सोना, आदिकी कमी तो है नहीं, चाहे जितना लगे। यहां तो—[गीतावली]

'बगरे नगरे निछावरि मणि गन जनु जुहारि जव धान।'
'रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहँ धाई॥'

अतः आप अपने स्वप्न महलका नकशा बनवाकर दे दीजिए। हम महल बनवा दें। महारानीजीने कहा—

'देखत बनैं बरनि नहिं जाई।'

उस विचित्र महलका बाहरी नक्शा भी मैं नहीं बना सकती, भीतरकी कलाकारीको कौन कहे। चक्रवर्तीजीने हँसकर कहा—स्वप्न आपने देखा है न कि मैंने देखा है। और न मेरे शिल्पशास्त्रियों [इन्जीनियरों] ने देखा है। तब भला महल कैसे बनेगा ? परन्तु महारानीने हठ किया कि चाहे जैसे हो हमें तो वैसा महल चाहिए। महाराजने अपने मित्र देवेन्द्रको एक पत्र लिखा कि आप तो मझली महारानीके शौर्य और हठको जानते ही है। महारानीजीने स्वप्नमें एक विचित्र महल देखा है, वह महल कैसा है, हम लोग मानवीय बुद्धिसे समझ नहीं सकते। आप देवता ही नहीं देवराज भी हैं अपनी देव शक्तिसे उस महलकी प्रति छवि [नक्शा] बना कर भेज दीजिये। जिससे वैसा महल यहां बनवा लिया जाय। त्रिभुवनपति इन्द्रने दानव शिल्प–शिरोमणि मय और देव शिल्प–शिरोमणि विश्वकर्मा दोनोंको आज्ञा दिया कि आप दोनों दिव्य शिल्पी उस स्वप्न महलकी रचना शीघ्र-से-शीघ्र कीजिए। तब दोनों दिव्य शिल्पी सामान्य वेषमें आकर

चक्रवर्तीजीसे अपना परिचय देकर आज्ञा लिये। पश्चात भूमि का संशोधन करके दूसरे दिन ही वह दिव्य कनक महल [सोने का महल] तैयार करके महारानीजीसे प्रार्थना किये, कि आप उसे देख लीजिए। जो त्रुटि हो उसे बतावें उसका सुधार कर दिया जाय। महारानीजीने स्वप्न महलसे भी अदभुत रचनासे बने उस महलको देखकर शिल्पियोंको पुरस्कार देना चाहा, तो शिल्पी जा चुके थे। महलको देख कर महारानी अपने महलमें आयी उसी समय—

'सानुज भरत भवन उठि धाये।'

और माताओंको समाचार दिया कि:—

'शतानन्द उपरोहित अपने तिरहुति–नाथ पठाये॥''

अनेक दिव्य समाचारोंके साथ सबसे बड़ा एवं दिव्य समाचार यह है कि— गीतावली [१/१०२]

करि पिनाक प्रन सुता स्वयंवर सजि नृप कटक बटोरयो।
राजसभा रघुबर मृणाल ज्यों शम्भु शरासन तोरयो॥

यह सुनते ही वीर हृदया महारानी आनन्द मग्न हो गयीं कि मेरा बेटा राम इतना योग्य निकला कि बिना एक बूँद खून गिराये तीनों लोकोंके वीरोंको जीत लिया।

अतः मेरा बेटा जब ब्याह करके लौटेगा और मेरे चरणों पर सिर रखकर प्रणाम करेगा तो बेटा रामको हृदयसे लगा कर यह महल पुरस्कारमें दे दूँगी।

[ख] महारानी कैकेयीको अपने रूपका बहुत भारी घमंड था। क्योंकि देवलोकमें जिस समय विजय-यात्राके समय महाराज दशरथके साथ गयी थीं, उस समय बड़ी कृपा करके देवलोकाधीश्वरी पौलोमी शचीको अपनी सखीका पद दिया। इन्द्राणीने समस्त स्वर्ग लोकका भ्रमण कैकेयीजीको कराया था। देखा कि देवलोकमें अन्य सुन्दरियां तो नगण्य हैं ही,

स्वयं त्रिभुवनेश्वरी शचीका रूप भी इनके सामने फीका पड़ गया था। [जननी सतक]

"सब देवलोककी ललनायें लखके अक्षुण तव दिव्य कांति।
हो गयीं चकित रह गयीं थकित मिट गयी रूपकी महा भ्रान्ति॥

उस विजय यात्राके बहुत दिनोंके बाद अवधेशजीके चार कुमार हुए। तभी जैसे भारतकी अन्य माताओंको पुत्र उत्पन्न होते ही सुन्दर छोटी-सी बहू लानेकी कल्पना मनमें होने लगती है और उसके लिये मन-ही-मन बहुत प्रयत्न करतीं हैं; उसी तरह तीनों माताओंको और अधिकतर मझली माता कैकेयीको बड़ी चिन्ता सताने लगी, कि जैसे मेरे चारों बच्चे अलौकिक सुन्दरता लिए हुए हैं वैसे [इनके समान] अलौकिक सुन्दरता सम्पन्न अलौकिक कन्यायें कहाँ मिलेगी जिनको मैं अपनी बहुओंका स्थान दूँगी। क्योंकि देवलोकमें भी हमारे बच्चोंके समान सुन्दर लड़की मिलना असम्भव है। परन्तु जब विदेहराज नगरीसे भू नन्दिनीका डोला आया तो चारों बहुओंको देखकर मझली महारानी भी चकित-थकित रह गयीं क्योंकि- "जानकी चरण चामर":—

'अंकालंकित मैथिली स्मित समुन्मीलत्कपोलस्थली।
रत्नादर्श विशत्प्रसन्न वदनः देवः प्रसन्नोऽस्तुनः॥

वदनममृतरश्मिं पश्य कान्ते तवोर्व्या—
मनिलतुलनदण्डेनास्यवाद्धौं विधाता।
स्थितमतुलयदिन्दुः खेचरोऽभूल्लघुत्वात्—
क्षिपति च परिपूर्त्यं तस्य ताराःकिमेताः॥

[महानाटक २/५८]

गृहे च यस्मिन्वस यस्म यास्पदे, वृथैव तास्मिन्मुकुराव रक्षणम्।
कपोल युग्म स्फटि कोलोपमेयदीय कृत्य क्रिय तेहि वो जनं॥

[भक्त कल्पद्रुम]

'गरब करहु रघुनन्दन जनि मन माँह ।
आपन रूप बिलोकहु सिय के छाँह ।' (बरवै रामायण)
'सिय मुख शोभा साज, धोये हाथ बिरंचि रचि ।
जल चुइभे द्विजराज, कर-झारे तारे-भये ॥'
[प्रो० स्व० लाल भगवान "दीन" जी

"ज्योतिके गंधमें आधो बराइ, बिरंचि रची मिथिलेश दुलारी।
आधो रह्यो तिहिको पुनि आधोकै, सूरज चंद्र प्रभानमें डारी ॥
बाकी रह्यो तिहिको युग भाग कै, एक तरैयनमें छबि पारी ।
एकहि अंशते तीनहु लोककी रूपवती-युवतीन सँवारी ॥१॥
'भूमि अकाश विचित्र पला दिशि डोर बयारिको दंड बनायो ।
तौलन बैठो सिया मुखचन्द औ चंद पितामह आप सुहायो ॥
चन्द पला उठि ऊँचो भयो विधिने तब एक कियो मनभायो ।
दीन्हें चढ़ाय नक्षत्र सबै "सिर मौर" तबौं न बराबर आयो ॥२॥
'वे इनपे इनहूँ उनपै बलि हैं बलि हैं मुदमें पगते हैं ।
ये उनके रूख राखैं सदा अलि वे इन राखन में खगते हैं ॥
पै मिथिलेश किशोरी छटा, अवलोकि लला अति ही ठगते हैं ।
'मोद' जो सांची कहो छबिमें तो ललीसे लला लघु ही लगते हैं ॥३॥
कोटिन रतिको रूप वारहीं तिनूका तोरि,
कोटि पूनो शरद सुधा धर गनै नहीं ।
विकस्यों विभाति कोटि अरब अनंत कंज,
सौरभित सोऊ नेकु भावत मनै नहीं ॥
उमा, रमा, शारदादि सुन्दरी समेटि सबै,
"यज्ञराज" तामैं ताको उपमा बनै नहीं ॥
कोमल वधूको मुख हेरि हेरि कौशिलाके,
हौशिला के मारे कुछ बोलत बनै नहीं ॥
कोटिन प्रयागहू ते परम पुनीता कोखि,
जायेभो निवास ऐसे परम पुनीताको ।

"व्रजराज" कैसेधौं बखानि पार पैहैं कवि,
सुखद सुभाव गुण गौरवके गीताको
वेशमें किशोरी अति भोरी राजहंसिनी सी,
पारायण पतिव्रत पालिवे अधीताको।
कौशिल्या सराहैं मिथिलेश भामिनीको भाग,
रामहूंतै सौगुनो बिलोकि रूप सीताको ॥५॥

खोलि मुख दुलहीको ननद लै नगीच बैठी,
देखिवेको युवतिनकी भीर जुरी बीसा है।
आगेते दायेंते बायेंते निहारैं सबै,
निज मुख दीसै पै न वाको मुख दीसा है।
'ग्वालकवि' आपसमें अचरजा सब मानि कहैं,
काको यह तिलस्मात् काको बखशीशा है।
बार बार हेरैं फिरि पूछैं दौरि सासुन से,
शीशा की ही बहू है कै बहूको बन्यो शीशा है६

(ग्वाल कवि मथुरा)

सासु को बुलाई सिय, आई अंगनाई बीच,
तादिन मृगाक्षिनको हेरिहिय हरिगो।
उलही दुकूल होइ दुलहीके अंग आय,
चंचल चपल चख चौंधनिमें भरिगो॥
घूँघट उघारि मुख देखत दशा बिसारि
फैलत प्रकाश 'चन्द' तेज मंद परिगो॥
गिरिजा-गिरा गुमान सिंधुजा शचीको शान,
काम बाम रूपको गुमान कूच करिगो ॥७॥

मुख कंजमें द्वै दृग कंज खिले, कमला कमलोपरि त्यों भ्रम होवै,
हसुली जनु हंस औ मोतिन माल, मनो जुग गंग तरंग सँजोवै॥
बिकसे बहु कंजन शोभित हैं रसराजमयी जल आनँद मोवै॥
श्रीमिथिलेशकुमारी नदी महँ, "रामकुमार" सदा श्रम धोवैं ॥८॥

(लेखकस्य)

शिबिका सुभग ओहार उघारी। निरखि दुलहिनिन होहिं सुखारी।

"सुखारी शब्द बता रहा है कि माताओंको जो दुख था कि हमारे पुत्रोंके समान सुँदरी बहुएँ हमें कहाँ मिलेगी, यह दुख दूर हो गया। उस आनन्दमें मझली महारानीजीको यह स्मरण नहीं रहा कि मैंने यह रत्नजटित दिव्य महल बेटे राम-को देनेका संकल्प किया है। वही महल श्रीसीताजीको मुख दिखायी दे दिया। इसलिए सूफी फकीर मोहन साईंने लिखा है कि:— **"मुँह दिखाई सियाको अजब गुइयाँ।"**

जब श्रीरामजीने माता कैकेयीको प्रणाम किया तब माताको स्मरण आया कि मैंने त्रैलोक्यविजयी बेटा रामको स्वप्नमें दर्शित दिव्य महल देनेका संकल्प किया था; परन्तु वह तो बहूको दे दिया गया, बेटेको अब क्या दूँ? क्षण मात्रमें स्मरण आया कि सखी-इन्द्राणीने दिव्यमणि गुंम्फित एक माला मुझे पहना दिया था, वह मेरे गलेमें है। बस झटपट बेटे रामको चरणोंसे उठाकर हृदयसे लगा लिया और मुख चूमकर मस्तक सूँघते हुए वही दिव्यमणि गुम्फित माला अपने गलेसे निकाल कर प्राणाधिक्य प्रियबेटा श्रीरामको पहना दिया। कई दिनोंतक जब महाराज कुमार श्रीरामभद्रजू माताको प्रणाम करने जाते थे तो वह मणिमाल श्रीरामजीके गलेमें पड़कर अधिक शोभाय-मान होती थी। पुष्प सैया [सुहागरात] के समय जब श्रीराम जी अपने [श्रीसीताजी वाले] कनक भवनमें गये तो दूसरे दिन माताजीने रामभद्रके गलेमें वह माला न देखा, परन्तु माला तुमने क्या किया, यह नहीं पूँछ सकती थी। क्योंकि पुरस्कार में दी गयी वस्तुके सम्बधमें कुछभी पूँछा नहीं जा सकता। पुरष्कृत व्यक्ति पुरस्कारको चाहे जो करे। माताने समझा शायद बहू पहनी हो। क्योंकि माताजीका अपना अनुभव था कि महाराज दशरथजीको जो बहुमूल्य वस्तुएँ भेंटमें मिलती

थी वह महारानी कैकेयीके महलमें आकर महारानीजीको प्राप्त होती थी। परन्तु जब अपनी बहिनोंके साथ श्री भू नन्दिनीजू मझली अम्बाको नित्यकी तरह प्रणाम करने गयीं तो वह माला उनके गलेमें भी दिखायी नहीं पड़ी [अन्य किसीके पास भी माला न होनेकी संभावनासे महारानीने अपनी गुप्त-चरियोंको वह दिव्य मणिमाल खोजनेमें लगा दिया। अतः बहुत अल्प समयमें ही पता लगा कि वह मणिमाल तो उपेक्षित-सी कनकमहलके एक ताखमें पड़ी है। कारण कि श्रीरामभद्रजूने यह मणिमाल भू नन्दिनीको दिया तो श्रीकिशोरीजीने कहा कि आप भी एक माला पहिनें तब तो मैं पहनूँगी। महाराज कुमारने कहा कि मैं माताजीसे अब कुछ माँगूगा नहीं। यह सारा समाचार जानकर मझली अम्बाने चक्रवर्तीजीसे आग्रह किया कि वैसा ही एक मणि देवराजसे माँग लीजिये। चक्रवर्ती जीने कहा—मैं क्षत्री हूं अतः—

"माँगउ भीख त्यागि निज धर्मा ॥ [मानस]"

न्यायानुसार धर्म विरुद्ध होनेसे माँग नहीं सकता और देवराज इन्द्र मेरे वसाये हुए अमरावतीके राजा हैं।

सुरपति बसे बाहुबल जाके ॥ [मानस]

और मेरे मित्र भी हैं। "ससुर सुरेश सखा रघुराऊ ॥ [मानस] 'आगे होई जेहि सुरपति लेई। अर्ध सिंहासन आसन देई ॥'

अतः मित्र एवं आश्रितपर चढ़ाई करके उनका कोष छीन लेना भी सर्वथा अनुचित है।

मझली अम्बाने चक्रवर्तीजीके परोक्षमें सारी घटना एक पत्रमें लिखकर अपने अभिमंत्रित बाणद्वारा पौलोमी शचीके पास भेजकर आग्रह किया कि हे सखि ! एक मणि उसी तरह की और भेज दीजिए, जिससे बेटा-बहू दोनों पहने और देख-देख कर हमारा हृदय प्रसन्न होता रहे। शची देवीने पत्रोत्तर

दिया कि स्वारोचिष मनवन्तरमें जिससमय समुद्र मंथन हुआ था उस समय समुद्रमेंसे चौदह रत्नोंके साथ एक मणि निकली थी, उसे भगवान नारायणने ले लिया, परन्तु वासुकीके नौसो फणोंसे एक-एक मणि निकल पड़ी थी। जो उनके स्थानों पर वितरण हो गयी। एक सबसे बड़ी और श्रेष्ठ मणि तत्कालीन देवराजीको मिली थी। इस मनवन्तरमें परम्परागत वही मणि मुझे भी मिली जिसे मैंने आपके चरणोंमें अर्पण करके अपना परम सौभाग्य माना था। अतः वैसी दूसरी मणि त्रिभुवनके किसी कोषमें नहीं है। ऐसा उत्तर पाकर महारानी कैकेयी मन मारकर शान्त हो गयी।

कुछ सप्ताह बाद श्री जनकजी अपनी बेटियोंसे मिलने अयोध्या आये। नगरके एक दक्षिण स्थानपर अपने पुरोहितको महाराज दशरथके पास भेजा कि इस जमीनका मूल्य दशरथजी ले लें, तो हम यहां रात्रि निवास करें और यहांका जल पीयें।

शास्त्रोंका सिद्धांत है कि जबतक बेटीके कोई संतान न हो जाय, तबतक उसके यहां उसके [कन्या के] माता पिताको न खाना चाहिए और न तो वहां निवास करना चाहिए। बेटीके संतान हो जाने पर वह सन्तान नानाके उत्तराधिकारी बन जानेसे बेटीके यहां भोजन और बेटीके गाँव में [घर में] रात्रि वास करना ऋषियोंने दोष नहीं माना है।

'रिषि रुख लखि कह तिरहुत राजू। इहाँ उचित नहिं असन अनाजू॥'
"कहा भूप भल सबहिं सुहाना॥ [मानस]

अस्तु राजा जनकजीके पुरोहितजीने जब दशरथजीसे दाम [कीमत] की बात की तो मर्यादा मानकर प्रधानमंत्री सुमंत्रने कनकभवनसे वही उपेक्षित देवमणि लाकर जनकजीके पुरोहितको दिया और कहा कि मिथिला नरेश इस मणिका

जोड़ा लगा दें तो जितनी भूमि चाहें उतनी भूमि घेर लें, और उसमें कुआँ, तालाब, बगीचा, महल जो भी बनाना चाहें सो बनवा लें। तब तक सरयूजीका जल मँगाकर पियें, क्योंकि सरयूजी तीर्थ हैं। तीर्थ और तीर्थ-जलपर किसीका स्वत्व नहीं होता। यद्यपि अयोध्याजीभी ब्रह्माण्डके सब तीर्थोंमें परम श्रेष्ठ महातीर्थ हैं। **"अयोध्यायां समं तीर्थं नास्ति ब्रह्माण्डगोल के"**

मैथिली पुरोहितने अवधेशके मंत्रीका प्रस्ताव बताकर मणि दिखलाया, जिसे देखकर विदेहराज आश्चर्य चकित हो गये और कहा कि आजतक मैंने ऐसी मणि देखी ही नहीं। "यद्यपि कि अश्वमेधकी पूर्तिपर मुझे देवेन्द्रने अनेक नागमणियां दीं थी, पर वे सब इससे हल्की ही थीं। किन्तु वे भी तो मेरे पास नहीं रहीं। 'पिताजी आज ही वापस जा रहे हैं, यह खबर सुनकर चारों विदेह राजकुमारियाँ सासुओंसे आज्ञा लेकर मिलने गयी। पिताजीको उदास देखकर श्रीभू-नन्दिनोजीने कारण पूछा तो विदेहराजने स्पष्ट बता दिया कि इस, भूमिका मूल्य महामंत्री सुमंत्रने इस मणिका जोड़ा लगा देना निर्धारित किया है और मैंने जब आज तक ऐसी मणि देखी ही नहीं तो इसका जोड़ा कहाँ से लाऊँ। अतः कुछ दिनोंतक मेरे भाग्य में अवध निवास नहीं है। अब मेरे लिये यहाँ रात्रि निवास न करके लौटजानाही सर्वथा उचित है। ऐसा विचारकर श्रीजनकजी मिथिला वापस जाने की तैयारी करने लगे। श्रीकिशोरीजीभी अपनी बहिनों सहित अपने--अपने महलोंमें लौट गयीं।

श्रीविदेहराजजी उसीदिन प्रस्थान कर गये। कई दिनोंके बाद जब अपने नगर पहुंचे, और नगरके प्रकोष्ठके भीतर जिधर उनकी दृष्टि गयी, सब तरफ उसीकोटिकी कोटान कोटि मणियां बिखरी हुई दीख पड़ीं। श्रीजनकजीने समझा श्रीवसुंधरा देवीने अपनी लाड़ली बेटीके लिए असंख्य दिव्य मणियां प्रकट

कर दिया है। वहाँसे महलमें जाकर महारानीजीसे सलाह करके उन्होंने सारी मणियाँ चुनवाकर सैकड़ों शकटोंमें भरवा दिया और मन्त्री एवं पुरोहितके साथ अपने युवराज कुमार वीरध्वज [लक्ष्मीनिधि] को साथ करके उन मणियोंको अयोध्या पहुंचा देनेके लिये भेजा और सुरक्षाके लिए साथमें थोड़ी–सी सेना भी कर दिया।

श्रावणकी अमावस्याकी सायंकालमें श्रीचक्रवर्ती राजा दशरथ अपने महलके ऊपर श्रावणी घटाका आनंद ले रहे थे। अचानक अग्निकोणमें देखा तो महान प्रकाश मालूम पड़ा, तो समझा कि भगवान भुवन भाष्कर पृथ्वीपर उतरकर हमारे ऊपर कृपा करनेके लिए आ रहे है। तुरन्त सुमन्तको बुलवाया और उस आग्नेय विदिशाके प्रकाशपुंज को दिखाकर कहा कि अपने कुल पुरुषके स्वागत एवं पूजनकी तैयारी करो, ऐसी आज्ञा दी। महामंत्री सुमंत ने हँसकर कहा–कि आप तो विदेहराजके परमौदार्य एवं उनके अटूट धनसे परिचित हैं ही।

'दाइज अमित न कहि सकिय, दीन्ह विदेह बहोरि।
जो अवलोकत लोक पति, लोक सम्पदा थोरि॥' मानस १/३३३

श्रीविदेहराजने पौलोमी प्रदत्त मणिके जोड़की असंख्य मणियाँ सैकड़ों शकटोंपर भरवाकर अपने युवराजके साथ भेजा है। उसे यहाँ पहुँचनेमें दो दिनकी देरी है। यह सुनकर अवधेश महाराज चकित हुए–कि जिसके जोड़की एक मणि भी इन्द्र लोकमें नहीं रहीं, वैसी अनंत मणियाँ श्रीविदेहराज भेज रहे हैं, तों ये मणियाँ कहाँ रखी जायेगी ? सुमंतने कहा–इनकी व्यवस्था मैं करूँगा। अस्तु......

श्रावण 'शुक्ला तृतीयाको प्रातःकाल मैथिल युवराजने महलमें उपस्थित होकर प्रणाम पुरस्सर निवेदन किया–कि पिताजीने थोड़ी सी मणियाँ भिजवाई हैं। चक्रवर्तीजीके इंगितसे श्रीसुमंत्रजीने उन मणियोंको कनक महलके दक्षिणमें अशोकवन

नामक महान् उपवनमें रखवा दिया। तब जनकके आमात्य और पुरोहितने सुमन्तजीसे कहा—मंत्रिन् ! इन मणियोंको महलमें न रखवाकर उपवनमें क्यों रखवारहे हैं ?

सुमन्तने वाक् चातुरीसे कहा-कि बेटेकी ससुरालकी मिली सभी चोज हम ग्रहण करलेंगे, परन्तु कंकड़ पत्थर महलमें नहीं रखा जाता। बात विनोदमें ही टल गयी।

दोपहर तक उन मणियोंको एकत्र रखनेपर एक बृहद स्तूप हो गया, उस स्तूपको लोग मणिपर्वत कहने लगे। और उसी श्रावणकी तृतीयाके सायंकालको श्रीकिशोरीजीका हिंडोला [झूला] उसी मणिपर्वतके सन्निकट अशोक उपवनके लोमसवन वटकी डालीमें पड़ा। और तबसे प्रतिवर्ष बरसात भर श्री-किशोरीजी वहीं रहने लगीं, जिसका स्मारक आजभी सीता-कुण्ड और जानकी मन्दिर है। आजभी श्रावण शुक्ला तृतीयाको अयोध्याजीके प्राय:सभी मुख्य मन्दिरोंमें श्रीसीतारामजी मणिपर्वत झूला झूलने आते हैं। इन मणियोंके बदलेमेंजो भूमि श्रीविदेहराजने दिया था उसका नाम आजभो जनकौरा (जनौरा) है।

वरविश्रामबाग स्थानका इतिहास

लेखक—मानसमर्मज्ञ—आचार्यप्रवर—पं०सच्चिदानन्ददासजी रामायणी

अयोध्या दक्षिणे भागे रम्य रत्नाचलस्थितः ।
द्वादशौपवनैर्मध्ये अशोको नाम विश्रुतः ॥१॥
सरिता तिलोदकीनाम्नी तन्मध्ये प्रवाहिता: ।
तास्याञ्चले समातिष्ठ वरविश्रामवागयो ॥२॥
वरविश्रामवागेषु रामग्रन्थं गृहं महत् ।
तस्य संस्थापकः आसीत् रामकुमार पंडितः ॥३॥
विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तौ रामभक्ति प्रचारकः ।
वेदविद्यानिधिः ख्याता श्रौत सिद्धान्तभूषणः ॥४॥
सच्चिदानन्ददासोऽहं तत्पादाब्जस्य सेवकः ।
विद्याभक्तिप्रदातारो सद्गुरुप्रणमामितम् ॥५॥

जाकी कीर्ति–कौमुदी सुख्यात् विद्वद्वर्ग–बीच,
सर्वशास्त्र विज्ञ बोधवानोंमें सुमार थे ।
अनभिज्ञ अपढ़ गँवारको बनाये विज्ञ,
व्यास कथावाचक बनाने में उदार थे ॥
रामकृष्ण–देव–द्रोही नास्तिककुतर्की कोभी,
शास्त्र अर्थ करके छुड़ाते जो खुमार थे ।
'आनन्द' अपार होत नमत पदारविन्द,
मेरे पूज्य गुरुदेव रामके कुमार थे ॥ [लेखकस्य]

विश्ववन्द्य, वेदवेद्य: आनन्दकंद, अवधेशनन्दन श्रीरामजीका **परमपावनचरित्र** समस्त व्यक्ति-कल्मषोंका विनाश करनेवाला है । **'वरविश्रामबाग** विहारिणी-बिहारीजीकी पवित्र गोदमें बैठकर इस **'वरविश्रामबाग'**नामक स्थानका इतिहास लिखनेकी इच्छाहो रहीहै।

अध्ययनकालमेंश्रीगुरूदेव भगवान्‌केमुखारविन्दसे यह कथा श्रवण करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था । उसी कथाका मुख्य आधारलेकर और श्रीगुरुदेव विरचित श्रीजानकी कृपापदावलीमहा काव्य एवं श्रीरामचरितका समाश्रय ग्रहणकरके कथा–वस्तु तैयार करूँगा ।

इस कथाका पोषण आचार्यप्रवर पूज्य सन्त श्रीसीताराम शरण जी महाराज लक्ष्मण किलाधीशजीसे भी हुआ था ।

वर का अर्थ श्रेष्ठ, उत्तम, उच्चकोटिका तथा देवादिसे प्राप्त वरदान, मनोरथपति, दूल्हा आदि हैं । कोशोंमें अर्थ दिये गये हैं । परन्तु यहाँ दो अर्थ ग्राह्य हैं । १–वर – उत्तम, विश्राम —आराम, बाग— उद्यान, बाटिका, बगीचादि है । यहाँ 'वर' शब्द विश्राम एवं बाग दोनोंका विशेषण होने से इस प्रकार अर्थ ग्रहण होगा—उत्तम आराम के योग्य उत्तम उद्यान ।
[२] वर—दूल्हा, विश्राम—आराम, बाग— उद्यान तात्पर्य दूल्हों का आराम करनेका उद्यान । यह दूसरा अर्थ एक विशेष कथा का भाव अपने अन्तर्हृदय में सँजोये हुये हैं । कथाका संक्षिप्त

रूप इस प्रकार है ।

श्रीअयोध्याजीमें प्रधान वनोंकी संख्या द्वादश है—अशोकवन प्रमोदवन, संतानक वन, पारिजातवन, मंदारवन, चंदनवन, चम्पकवन, रमणकवन, आम्रवन, पलासवन, कदम्बवन, और तमालवन ये द्वादश वनोंके नाम हैं ।

कविवर श्रीरसिकबिहारीजीने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ राम-रसायनमें उपर्युक्त द्वादशवनोंमें प्रधानतम् अशोकवनको ही मानकर प्रथम स्थानपर अशोकवनको ही दिया है:—

प्रथम अशोक प्रमोद बहुरि संतानक जानौ ।
पारिजात मंदार सुचन्दन चंपक मानौ ॥
रमणक आम्र पलास कदम सोहै तमालघन ।
ये सरयूके तीर अनूपम हैं द्वादश वन ॥

उसी सघन अशोकवनके अन्दर रत्नाचल-मणिपर्वतकी स्थिति हैं । मणिपर्वतके उत्तरांचलमें तिलोदकी गंगा प्रवाहित होती है । अयोध्यापुरीके अन्तर्गत सरयूनदीके अतिरिक्त चार और छोटी-बड़ी नदियाँ हैं, जो अयोध्यामें ही श्रीसरयूजीमें मिल गयी हैं । उन चारोंमें सबसे छोटी तिलोदकी हैं, जो अयोध्याके पूर्व सरयूजीमें मिलती हैं । अन्य तीन नदियोंके नाम इस प्रकार हैं:—मनोरामा, कुब्जा [टेढ़ी], बृद्धा [मड़हा]। तिलोदकीके उत्तर भागमें रत्नाचल पर्वतके ठीक सामने ही वरविश्रामबाग नामक स्थान सुशोभित तात्पर्य वरविश्रामबागके दक्षिण द्वारपर तिलोद-की नदी प्रवाहित होती हैं । भगवान् श्रीरामका जबसे अवतार कालीन लीलाका समापन हो गया, तभीसे श्रीरामवियोगमें आंसू बहाती हुई जैसी यह तिलोदकी नदी वर्षके दश महीने सूख जाती है । पुनः जब श्रीराघवेन्द्र सरकारकी वर्षा ऋतुमें झूलन लीला प्रारम्भ होनेका समय आता है, तो यह नदी पुनः प्रवाहित होने लग जाती है ।

इस छोटी सी नदीकी विशेषता है कि जबतक युगल

सरकार श्रीसीतारामजी बरसातके दो महीने मणिपर्वतकी तलहटी में झूलन-विहारका आनन्द लेते हैं, और वरविश्रामबागमें रात्रिकालीन विश्राम करते हैं. तभीतक यह नदी प्रवाहित रहती है। जब प्रभु शेष ऋतुओंमें अन्यत्र वनोंमें विहार-निवास की लीला सम्पन्न करने चले जाते हैं, तो उनके वियोगमें यह सूख जाती है। वरविश्रामबागके पश्चिम भागमें मणिकुण्ड हैं, पूरबभागमें झरना-बाग एवं विद्याकुण्ड है। विद्याकुण्ड पर ही श्रीविद्यादेवीका मंदिर है।

आजभी वर-विश्रामबागमें पूर्णतः शान्तिका साम्राज्य है। वरविश्रामबागके स्वामी श्री जानकी रमण भगवान् आजभी विश्रामकुञ्जमें शयन करते हुयेसे प्रतीत होते हैं।

सन्तोंका अनुभव है कि यहाँ इस स्थानपर आतेही विश्राम करनेकी स्वाभाविक इच्छा उत्पन्न हो जाती है। वरविश्रामबाग में अखाद्य, अपेय एवं अग्राह्य वस्तुओंका प्रवेश नहीं होता है। गाँजा, भाँग, अफीम, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट आदिका जहरीला धुंआं एवं उनका अपवित्र दुर्गन्ध फैलाना यहाँ सर्वथा मना है। इसप्रकार यह वरविश्रामबाग अपनी पवित्रता एवं रमणीयतालिये हुए श्रीसीतारामजीकी सेवामें प्राचीनकालसे आजतक विद्यमान है।

रुद्र यामलान्तर्गत अयोध्या माहात्म्ये

नानावृक्षलतागुल्मैः परितः परिवारितः।
तिलोदकी परिसर यत्रवाति सदा नदी ॥ १ ॥
एकदा जानकी भद्रं रामं वचन मब्रवीत्।
प्रसन्नमानसंज्ञात्वा क्रीड़ितुम् कृत मानसा ॥ २ ॥
श्रीजानक्युवाच–राघवेन्द्र महाराज यदि तुष्टोऽसि मे प्रभो।
क्रीडार्थं पर्वतं दिव्यं समानाय रघुत्तम ॥ ३ ॥
सस्मार गरुड़ं रामः शीघ्रमागत्य पक्षिराट्।
उवाचबचनं श्रेष्ठं किं कार्यं तत्वद्प्रभो ॥ ४ ॥

यह मणिपर्वत अनेक प्रकारके वृक्षों, लताओं तथा लताकुंजों से घिरा हुआ है जिसके किनारे पर सदा तिलोदकी गंगा बहा करती हैं ॥१॥

एक समय श्रीजानकी अम्बाने श्रीरामभद्रजीको प्रसन्नचित्त जानकर क्रीड़ा करने में उत्कट उत्कण्ठा करके लीलाधर श्रीरामजीसे कहा ॥२॥

हे रघुवंशभूषण, महाराज ? हे प्रभो ? यदि मुझ पर आप प्रसन्न हैं तो क्रीड़ा करनेके लिए दिव्य पर्वतको लाइये क्योंकि आप रघुवंश शिरोमणि हैं ॥३॥

श्रीरामभद्रजीने उसी समय पक्षियोंके राजा गरुड़जीका स्मरण कियां, स्मरण करते ही गरुड़जीने आकरके नम्रता तथा भक्तिपूर्ण बचनोंसे कहा, हे प्रभो ! किस कार्यके लिये मेरा स्मरण आपने किया है आज्ञा दीजिए मैं सम्पादन करूँ ।

श्रीराम उवाच—

वैनतेय त्वयागत्वा कौवेर्य्यां दिशि शीघ्रतः ।
आनेतव्यः खगश्रेष्ठ मणिपर्वतकः शुभः ॥ ५ ॥

श्रीरामभद्रजीने कहा—हे विनता नन्दन ! आप उत्तर दिशामें जाकर शीघ्रही मंगलमय मणियोंका पर्वत ले आइये ॥५॥

वैनतेयस्ततो गत्वा पर्वतं मणिनायुतम् ।
आनीय रामचन्द्राय नमस्कृत्य पुरः स्थितः ॥६॥

श्रीगरुड़जी श्रीरामभद्रजीकी आज्ञासे उत्तर दिशामें जाकर मणियोंसे युक्त पर्वतको श्रीरघुनन्दनजीके लिए लाकर प्रणामकर सामने खड़े हो गये ॥६॥ गरुड़ उवाच—

आतीतः पर्वतोदिव्यः स्थापनार्थं स्थलं वद् ।
रामचन्द्रमहाबाहो! जानकीप्रीतिबर्द्धनम् ॥७॥

श्रीगरुड़जीने कहा—हे महाबाहो श्रीरामभद्रजी । मनोहर मणिमय पर्वत मैं लाया हूँ, जो स्थान महारानी, जानकीजीको प्रिय हो, जहाँ रखना चाहती हों उस स्थानको बतलाइये ॥७॥

श्री राम उवाच—

विद्याकुण्डात्पश्चिमेतु समीपे स्थाप्यतां गिरिः ।
जानकीप्रीतिजननः पर्वतो मणिसंज्ञकः ॥८॥
राघवस्य बचःश्रुत्वा स्थापयामास पर्वतम् ।
तार्क्ष्यो रामं नमस्कृत्य परिक्रम्यदिवं ययौ ॥ ९ ॥

श्रीरामजीने कहा—हे गरुड़जी । विद्याकुण्डसे पश्चिम दिशा-में इस पर्वतको स्थापित कीजिये । यह मणिपर्वत मणिमय है । श्रीजानकीजीके प्रेमको बढ़ाने वाला है ॥८॥

श्रीरामभद्रजीके वचनको सुनकर श्रीगरुड़जीने निर्दिष्ट स्थानपर मणिपर्वतको स्थापित कर दिया । तथा श्रीरामभद्र जीको प्रणाम एवं परिक्रमा करके वैकुण्ठ चले गये ॥९॥

राघवो जानकीं प्राह दृश्यतां मणिपर्वतः ।
सखीभिः क्रीड्यतां सार्धं त्वया जनकनन्दिनि ॥१०॥

श्रीरघुनाथजीने श्री जानकीसे कहा—हे प्रिये । हे जनक-नन्दिनीजी ! यह मणियोंका पर्वत आ गया देखो ! तथा सखियोंके साथ इसपर क्रीड़ा करो ॥१०॥

मेरु मन्दर तुल्योऽपि राशिः पापस्य कर्मणः ।
तत्क्षणांन्नाशमायाति मणिपर्वत दर्शनात् ॥११॥
जन्मान्तरसहस्रेषु यत्पापं समुपार्जितम् ।
तत्सर्वं नाशमायाति मणिपर्वतदर्शनात् ॥१२॥

सुमेरु तथा मन्दराचल पर्वतके तुल्य भी पाप कर्मोंकी रा मणिपर्वत दर्शन करनेके क्षण ही नष्ट हो जाती है, और हज जन्मोंका कमाया हुआ समस्त पाप मणिपर्वतके दर्शनमा नष्ट हो जाता है ।

अवधिपुरी से दक्षिणै, मणि पर्वत मशहूर ।
श्रावण शुक्ला तीजसे, झूलत सिय रघुबीर ॥

———

अनन्तश्रीविभूषित मानसतत्त्वान्वेषी, वेदान्तभूषण डा० पं० श्रीरामकुमार दासजी रामायणी डी० लिट्० मणिपर्वतअयोध्याद्वारा रचित पुस्तकोंकी सूची

[पूरीपुस्तकोंका मूल्य] ४३६/- १ सेट पूरीपुस्तकेंलेनेपर २५% छूट पर ३२७-४० डाकखर्च अलग लगेगा, वी० पी० द्वारा पुस्तकें नहीं भेजी जायेगी।

क्रमाङ्क पुस्तकोंका नाम	मूल्य
१-रामचरितमानस संशोधितपाठ	
२-जानकीकृपापदावली १ खंड	४०/
३-जानकीकृपापदावली २ खंड	४५/
४-मानसके महर्षि 'शोधप्रबंध'	४०/
५-मानसशंकासमाधान १खंड	१५/
६-मानसशंकासमाधान २ खंड	२०/
७-मानसशंकासमाधान ३खंड	१५/
८-मानसशंकासमाधान ४खंड	२५/
९-वेदोंमें कृष्णकथा सटीक	२५/
१०-श्रीरामलीलारामायण१खंड	२५/
११-श्रीरामलीलारामायण २खंड	२५/
१२-जयीजटायु 'जटायु चरित्र'	१५/
१३-वेदान्तदर्शन 'विशिष्टाद्वैत'	१०/
१४-धन्यजटायु 'खण्ड काव्य'	१०/
१५-वैष्णब साधन नियमावलो	८/
१६-श्रीरामस्वभाव [प्रवचनात्मक]	६/
१७श्रीरामरणक्रीड़ा [प्रवचनात्मक]	६/
१८-रामजन्मभूमि बलिदानीगाथा	५/
१९-मानसमें दोदान'अद्भुत प्रसंग'	५/
२०-मानसमें नारीनिंदा-दीक्षा	५/

क्रमाङ्क पुस्तकोंकानाम	मूल्य
२१-सुधा कांड [सुन्दर कांड]	५/
२२-सत्योपाख्यान 'बाललीला'	५/
२३-श्रीरामचरितके तीन क्षेपक	५/
२४-सीता-जनकात्मजा'जन्मकथा'	४/
२५-प्रेममयीमुद्रिका 'रुचिरप्रसंग'	४/
२६-मनोहरचार 'मार्मिकप्रसंग	४/
२७-वरकीखोज 'सीतास्वयंवर'	३/
२८-भागवतमें श्रीरामपरत्व	३/
२९-'मानसमें'पुष्पवृष्टिका कारण	३/
३०-पहुनाई 'शबरी कथा'	३/
३१-मणिपर्वतका इतिहास	३/
३२-भक्तिकाश्रृंगार[प्रवचनात्मक]	३/
३३-मानसके सँपेरे'विचित्र कथा'	२/
३४-अनंदिता 'सीतात्याग नहीं'	२/
३५-सुन्दरकांडमूल संशोधितपाठ	२/
३६-मानसचतुश्शती कुसुमांजलि	१/
३७-राष्ट्रीय एकता 'पद्यात्मक'	१/
३८-श्रीरामानंद चालोसा	१/
३९-श्रीतुलसीदास चालीसा	१/
४०-प्रेतनिवारक हनुमतस्तोत्र	१/

पुस्तक मँगाने का पता—

मानसमर्मज्ञ आचार्यप्रवर—पं० श्रीसच्चिदानन्ददासरामायणी
महान्त-वरविश्रामबाग, श्रीरामग्रन्थागार, मणिपर्वत श्रीअयोध्या-२२४१२३

नौट—श्रीअयोध्या पधारकर विशाल श्रीरामग्रन्थागार [पुस्तकालय] का दर्शन करें और सरयू स्नान एवं भगवद्भागवत साक्षात्कार कर अपनेको कृतार्थ करें। व्यवस्थापक-पं० रघुनाथदास रामायणी